ब्रांडेड जेनेरिक दवाइयों का मायाजाल

डॉ. इंजेती श्रीनिवास

भारत का दवा बाज़ार इस मायने में अनूठा है कि यहां ब्रांडेड जेनेरिक्स की भरमार है। इन्हें मूल्य में फायदा मिलता है हालांकि औषधीय असर की दृष्टि से ये तथाकथित अन-ब्रांडेड जेनेरिक दवाइयों से कदापि बेहतर नहीं होती। ब्रांडेड जेनेरिक्स की आक्रामक बिक्री की वजह से दवाइयों की कीमतें बढ़ी हैं, बेतुके औषधि मिश्रणों को बढ़ावा मिला है और उद्योग में केंद्रीकरण में वृद्धि हुई है। वक्त आ गया है भारत जेनेरिक दवाइयों की ब्रांड-मुक्ति की ओर कदम बढ़ाए।

जेनेरिक दवाइयों ने दुनिया भर में दवाइयों को किफायती बनाने में योगदान दिया है। कारण यह है कि जेनेरिक दवाइयों के साथ ज़बर्दस्त प्रतिस्पर्धा भी आती है। ब्रांड नाम वाली दवा को तो व्यापारिक पेटेंट के तहत सुरक्षा मिली होती है कि पेटेंट-धारक ही इसे बेच सकेगा। दूसरी ओर, मूल-पेटेंट की अवधि समाप्त होने के बाद जेनेरिक दवाइयों का उत्पादन और विपणन कई प्रतिस्पर्धियों द्वारा किया जाता है। ये मूल कीमत से काफी कीमत पर बेची जाती हैं। इस तरह से उपभोक्ताओं को फायदा मिलता है।

फार्माकोपिया में जेनेरिक दवा में वही सक्रिय औषधि घटक (एपीआई) होते हैं जो मूल दवा में हुआ करते थे। जेनेरिक दवा की खुराक, शक्ति, असर व उपयोग भी ठीक मूल दवा की तरह होता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में 1996 से 2007 के बीच खाद्य व औषधि प्रशासन द्वारा स्वीकृत दवाइयों के 2070 अध्ययनों से पता चला था कि जेनेरिक दवाइयां मूल दवाइयां के टक्कर की ही थीं। इन अध्ययनों में विभिन्न औषधियों की जैविक समतुल्यता का आकलन किया गया था। भारत में भी स्थिति इससे अलग नहीं है। सारी दवाइयां, जेनेरिक संस्करण समेत, पर एक समान वैधानिक शर्तें, निरीक्षण व अनुमोदन व्यवस्था लागू होती हैं। सारे निर्माताओं को औषधि व प्रसाधन कानून, 1940 की अनुसूची एम में निर्दिष्ट उत्पादन के अच्छे कामकाज का पालन करना पड़ता है। सभी को लेबलिंग व गुणवत्ता के एक जैसे मानकों का पालन करना पड़ता है और सभी को उत्पादन व बिक्री के लायसेंस प्राप्त करना पड़ते हैं। जब यह पाया जाता है कि कोई दवा फार्माकोपिया के निर्देशों के अनुरूप नहीं है या गुणवत्ता की दृष्टि से फार्माकोपिया के मानकों पर खरी नहीं उतरती है, तो उसे अमानक दवा घोषित किया जाता है और उसे बाज़ार में बेचने की अनुमति नहीं मिलती।

स्वास्थ्य व परिवार कल्याण मंत्रालय द्वारा अमानक दवाइयों के एक अध्ययन (2009-10) में दवाइयों के 24,136 नमूनों में से मात्र 11 यानी मात्र 0.046 प्रतिशत गुणवत्ता की जांच में असफल हुए थे। इसी प्रकार 2001-08 के बीच प्रांतीय औषधि नियंत्रक द्वारा किए गए अध्ययनों में महज़ 0.3-0.4 प्रतिशत नमूने ही अमानक पाए गए थे। इसी प्रकार से हाल ही में विशेषज्ञों के एक दल ने जन औषधि समेत विभिन्न जेनेरिक दवाइयों की कीमतों व गुणवत्ता की तुलना की थी। देखा गया कि जेनेरिक दवाइयां पहचान, वज़न में एकरूपता, विश्लेषण, पदार्थों की एकरूपता और घुलनशीलता के लिहाज़ से ब्रांडेड जेनेरिक के समतुल्य थीं। अर्थात यह आम धारणा गलतफहमी पर आधारित है कि अन-ब्रांडेड जेनेरिक दवाइयां घटिया गुणवत्ता की होती हैं। इसीलिए अधिकांश देश जेनेरिक दवाइयों को बढ़ावा देने के लिए कदम उठाते हैं, क्योंकि वे कीमत की दृष्टि से भी फायदेमंद हैं और असर की दृष्टि से भी।

जेनेरिक की किस्में

आम तौर पर जब किसी ब्रांड नाम वाली दवा का पेटेंट समाप्त हो जाता है, तो कठोर प्रतिस्पर्धा के चलते शुरू-शुरू में उसका बाज़ार मूल्य 30-40 प्रतिशत और अंततः 90 प्रतिशत तक कम हो जाता है। यूएस का दवा बाज़ार दुनिया में सबसे विशाल है। यह बाज़ार लगभग 32.5 अरब डॉलर का है, जो विश्व के दवा बाज़ार का एक-तिहाई है। यूएस

का दवा बाज़ार जेनेरिक के मामले में भी अग्रणी है - बिक्री की मात्रा के हिसाब से 84 प्रतिशत और बिक्री की रकम की दृष्टि से मात्र 28 प्रतिशत जेनेरिक दवाइयां हैं। युरोपीय संघ तथा आर्थिक विकास व सहयोग संगठन (ओईसीडी) के कई अन्य देशों में भी ऐसी ही स्थिति है। इन देशों में जेनेरिक प्रतिस्पर्धा के चलते दवाइयों पर वास्तविक खर्च कम होता जा रहा है।

इसके विपरीत, भारत के 80,000 करोड़ रुपए के घरेलू दवा बाज़ार में जेनेरिक का हिस्सा मात्र 8 प्रतिशत है। बाज़ार में तथाकथित ब्रांडेड जेनेरिक्स (90 प्रतिशत) का बोलबाला है। यह स्थिति भारत में ही नज़र आती है। हमारे देश के बाज़ार में अन-ब्रांडेड जेनेरिक्स और ब्रांड नाम से बिकने वाली या पेटेंटशुदा दवाइयों का हिस्सा बहुत ही कम है; दोनों का हिस्सा तकरीबन 1-1 प्रतिशत होगा।

ब्रांडेड जेनेरिक्स और अन-ब्रांडेड जेनेरिक्स (जिन्हें ट्रेड जेनेरिक्स भी कहते हैं) के बीच अंतर का सम्बंध दरअसल उनकी मार्केटिंग की रणनीति से है। जहां ब्रांडेड जेनेरिक्स की बिक्री डॉक्टर-चालित या डॉक्टरी पर्ची से तय होती है वहीं ट्रेड जेनेरिक्स की बिक्री फुटकर व्यापारी यानी केमिस्ट के नियंत्रण में होती है। ब्रांडेड जेनेरिक्स की तुलना में ट्रेड जेनेरिक्स काफी सस्ते होते हैं, क्योंकि दवा कंपनियां सीधे-सीधे प्रमोशन पर खर्च नहीं करती बल्कि खेरची विक्रेता को ज़्यादा मार्जिन देती हैं ताकि वह बिक्री बढ़ाने में दिलचस्पी ले। सुविधा की दृष्टि से हम इन दो को एक साथ रख सकते हैं क्योंकि दोनों ही अपने-अपने ब्रांड नाम से बेची जाती हैं। विडंबना यह है कि कई प्रतिष्ठित दवा कंपनियां एक ही दवा के ब्रांडेड जेनेरिक और ट्रेड जेनेरिक दोनों का उत्पादन करती हैं। इन दोनों में थोड़ा-बहुत सजावटी फर्क हो सकता है मगर औषधि के लिहाज़ से वे एक ही होती हैं। यानी वे एक ही औषधि को दो रास्तों से आगे बढ़ाती हैं ताकि बाज़ार पर अधिक से अधिक कब्ज़ा जमा सकें।

दूसरी ओर, अन-ब्रांडेड जेनेरिक रासायनिक नाम से बेची जाती हैं और फुटकर बाज़ार में इनकी बिक्री कमोबेश जन औषधि योजना तक सीमित है। जन औषधि की देश के दवा बाज़ार में कोई खास उपस्थिति नहीं है। अन-ब्रांडेड जेनेरिक्स की प्रमुख मांग सरकारी एजेंसियों से आती है, जो सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं के लिए जेनेरिक नामों से दवाइयां खरीदती हैं। मगर आंकड़ों के अभाव में इस बिक्री की मात्रा का अंदाज़ा लगाना मुश्किल है।

ब्रांडेड जेनेरिक का महत्व

शब्द ब्रांडेड जेनेरिक अपने आप में विरोधाभासी है क्योंकि इससे न तो कीमत सम्बंधी कोई लाभ मिलता है, जैसा कि ब्रांड नाम वाली दवा में मिलता है, और न ही इसमें कोई औषधीय लाभ है जो प्रायः ब्रांड नाम वाले उत्पाद के साथ जुड़ा होता है। बारंबार इनके उच्चतर असर के जो दावे किए जाते हैं वे दरअसल दवा कंपनियों द्वारा स्वयं किए गए दावे ही हैं क्योंकि उनके पीछे केंद्रीय औषधि मानक नियंत्रण संगठन का कोई अनुमोदन नहीं है। देश में यह संगठन ही एकमात्र संस्था है जो इस तरह के निर्णय ले सकती है। युनाइटेड किंगडम में नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ हेल्थ एंड केयर एक्सेलेंस (नाइस) किसी दवा के औषधीय मूल्य को मापने और प्रमाणित करने वाली संस्था है। इनमें वे औषधियां भी शामिल होती हैं जो गैर-सक्रिय औषधीय घटक वाली नवीन डिलीवरी सिस्टम पर आधारित होती हैं। इसका प्रमुख मकसद दवा के मूल्य के आधार पर कीमतों को बढ़ावा देना है। इसी प्रकार से जर्मनी में यही काम एनमोग नामक एक संस्था करती है। भारत में भी स्थानीय शोध के ज़रिए विकसित नवीन डिलवरी सिस्टम वाली दवाइयों को कीमत नियंत्रण से छूट मिलती है बशर्ते कि उन्हें औषधि व प्रसाधन कानून के तहत स्वीकृति मिल चुकी हो। मगर किसी अधिकृत संस्था द्वारा प्रमाणीकरण के अभाव में यह कहा जा सकता है कि ब्रांडेड जेनेरिक और अन-ब्रांडेड जेनेरिक के बीच फर्क औषधि विज्ञान के आधार पर नहीं है बल्कि यह तो एक मार्केटिंग रणनीति है ताकि ब्रांड नाम से जुड़े फायदे लिए जा सकें।

ब्रांडेड जेनेरिक की मार्केटिंग रणनीति दो बातों पर टिकी है। पहली, दवा कंपनियों द्वारा आक्रामक प्रचार-प्रसार जो डॉक्टरों पर प्रभाव डालने के लिए किया जाता है, और दूसरी, डॉक्टर और मरीज़ के बीच जानकारी का

असंतुलन जिसके चलते मरीज़ उसको दिए जा रहे इलाज की लागत-क्षमता के बारे में सोचा-समझा फैसला करने में असमर्थ रहता है। हालांकि ऐसा नहीं है कि विकसित देशों में ब्रांडेड जेनेरिक अनजानी चीज़ है मगर ये कमोबेश ओव्हर दी काउंटर (ओटीसी)/गैर-प्रिस्क्रिप्शन दवाइयों के क्षेत्र में ही दिखती हैं जहां मरीज़ का निर्णय महत्व रखता है और कीमतें प्रतिस्पर्धा से निर्धारित होती हैं। इसके विपरीत भारत में ब्रांडेड जेनेरिक सिर्फ ओटीसी तक सीमित नहीं है और अधिकांश ब्रांडेड जेनेरिक उस परिस्थिति में बेची जाती हैं जहां मरीज़ के हाथ में निर्णय लेने का कोई अधिकार नहीं होता।

कोई फर्क नहीं

लिहाज़ा, ब्रांडेड जेनेरिक और अन-ब्रांडेड जेनेरिक के बीच कोई अंतर है तो सिर्फ शक्ल का है। जहां अन-ब्रांडेड जेनेरिक उनके रासायनिक नामों से बेची जाती हैं वहीं ब्रांडेड जेनेरिक को उसके ब्रांड नाम या ट्रेड नाम से बेचा जाता है। बाज़ार में एक ही जेनेरिक नुस्खा दर्ज़नों या कभी-कभी तो सैकड़ों ब्रांड के नाम से बेचा जाता है। इसके चलते जानकारी का असंतुलन पैदा होता है। ऐसी स्थिति में यह सोचना बिलकुल गलत है कि महंगा ब्रांड बेहतर क्वालिटी का होगा या ब्रांडेड दवाई अन-ब्रांडेड जेनेरिक दवाई से बेहतर होगी क्योंकि सारी दवाइयों पर एक-सी शर्तें और मानक लागू होते हैं। क्वालिटी का ख्याल रखना निर्माता का दायित्व है और यह दायित्व सिर्फ ब्रांडेड दवाइयों के लिए नहीं है। प्रतिष्ठित निर्माता बार-बार यह दावा करते हैं कि वे फार्माकोपिया में निर्देशित मानकों से भी ऊंचे मानक बनाए रखते हैं। इस बात में कोई दम नहीं है क्योंकि फार्माकोपिया द्वारा निर्धारित मानक मरीज़ के उपचार व सुरक्षा के लिहाज़ से यथेष्ट हैं। वैसे भी, ऊंचे मानकों का बहाना बनाकर आप अनाप-शनाप कीमतें वसूल नहीं कर सकते जबकि मरीज़ को कोई अतिरिक्त लाभ न मिलता हो। जब एक ही जेनेरिक नुस्खे के विभिन्न ब्रांड उपचार की दृष्टि से बराबर हैं और एक की जगह दूसरे का सेवन किया जा सकता है तो उनके बीच कीमतों का भारी अंतर आसानी से समझ में नहीं आता। कई बार ब्रांडेड जेनेरिक दवाइयां उस दवा के न्यूनतम मूल्य वाले ब्रांड से तीन-चार गुना दामों पर बेची जाती हैं। और उनकी कीमत अन-ब्रांडेड दवा से तो 10 गुना तक अधिक होती हैं। यह अंतर जेनेरिक ब्रांडेड दवा और पेटेंटशुदा दवा के बीच भी होता है मगर वहां अंतर इसलिए होता है कि निर्माता ज्ञान के स्वामित्व को अपनी कीमत में जोड़ता है मगर ब्रांडेड-गैर-ब्रांडेड जेनेरिक के बीच अंतर तो मात्र सप्लायर द्वारा निर्मित कथित ब्रांड-मूल्य होता है। विडंबना है कि कई बार वही दवा विकसित देशों को जेनेरिक नाम से निर्यात की जाती है जबकि भारतीय बाज़ार में इसे ब्रांड नाम से बेचकर अतिरिक्त मुनाफा कमाया जाता है। यह भारतीय दवा उद्योग के दोहरे मानकों को उजागर करता है।

बाज़ार का वर्चस्व

भारतीय मरीज़ों को जेनेरिक प्रतिस्पर्धा का पूरा लाभ इसलिए नहीं मिल पाता क्योंकि यहां ब्रांडेड जेनेरिक बाज़ार पर हावी हैं और उन्होंने इसे उपचार-मूल्य की प्रतिस्पर्धा का नाम दे दिया है। भारत में दवाइयों की कीमतों को आम व्यक्ति की खरीद क्षमता के लिहाज़ से आंका जाना चाहिए, न कि अन्य देशों में प्रचलित कीमतों से तुलना के आधार पर। भारत में ब्रांड्स कुकुरमुत्तों की तरह पनपते हैं और इनमें ढेर सारे तैयारशुदा मिश्रण (fixed dose combinations) होते हैं। भारत में बेची जानी वाली 40 प्रतिशत दवाइयां fdc हैं। जबकि सुविकसित दवा बाज़ारों में इनका प्रतिशत 20 है। देश में बेचे जाने वाली कई fdc बेतुके मिश्रण हैं। इनका बेहतर नियमन करने की ज़रूरत है। देश में 20,000 से ज़्यादा ब्रांड्स हैं, जिन्हें यदि उनकी शक्ति व खुराक के आधार पर बांटा जाए तो संख्या 1,70,000 तक पहुंच जाती है। इनमें से करीब 90,000 फुटकर बाज़ार में काफी सक्रिय हैं। दुखद बात यह है कि कई मामलों में एक ही निर्माता एक ही नुस्खे को अलग-अलग ब्रांड नामों से, देश के अलग-अलग इलाकों में अलग-अलग कीमतों पर बेचता है।

हाथी समिति ने 1975 में ही यह सिफारिश की थी कि धीरे-धीरे जेनेरिक को ब्रांड विहीन कर देना चाहिए। 2005

में प्रणब सेन टास्क फोर्स ने इस बात को दोहराया था और हाल ही में (2011) वी. एम. कटोच टास्क फोर्स ने फिर यही बात कही है। कटोच टास्क फोर्स ने तो सिफारिश की है कि सारी एकल-घटक दवाइयों को सिर्फ जेनेरिक नाम से ही बेचा जाना चाहिए। इसके लिए ज़रूरी होगा कि औषधि नियंत्रक सिर्फ जेनेरिक नामों को ही स्वीकृति दें, ब्रांड नामों को नहीं। इसके लिए शायद 1999 के ट्रेड मार्क कानून में भी संशोधन की आवश्यकता होगी।

तथ्य यह है कि बाकी सारी वस्तुओं के बाज़ार में ब्रांडेड उत्पाद अन-ब्रांडेड की तुलना में नगण्य हैं, जबकि दवा के क्षेत्र में मामला एकदम उलट है। इससे पता चलता है कि दवा क्षेत्र में उपभोक्ता सम्राट नहीं है। इससे भी दुखद बात यह है कि दवा का अधिकांश खर्च आम जनता अपने जेब से करती है क्योंकि बाह्य रोगी उपचार में सरकारी सहायता ना के बराबर है।

ब्रांडेड जेनेरिक की वजह से बाज़ार में जो विकृतियां पैदा होती हैं उसकी एक बानगी हमें बाज़ार में केंद्रीयकरण के रूप में दिखती है। इस उद्योग के कुल कारोबार में 41 प्रतिशत तो टॉप 10 कंपनियों के हाथ में है जबकि 100 कंपनियां मिलकर 95 प्रतिशत पर काबिज़ हैं। चूंकि बड़ी दवा कंपनियों की उत्पादन क्षमता का बड़ा हिस्सा तो उनके निर्यात लक्ष्यों (करीब 14-15 अरब डॉलर) को पूरा करने में खप जाता है, इसलिए घरेलू बाज़ार की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए वे लगभग 7000 छोटी व मध्यम इकाइयों पर निर्भर हैं। यह काम ठेके पर लोन लायसेंस के आधार पर किया जाता है।

भारतीय दवा बाज़ार में दवा नुस्खों के स्तर पर भी बहुत केंद्रीयकरण है। आम तौर पर इस्तेमाल होने वाले 2583 दवा नुस्खों में से 2230 (86 प्रतिशत) कुछ ही हाथों में केंद्रित हैं जो पूरे घरेलू बाज़ार के 50 प्रतिशत का द्योतक है। ब्रांड के आधार पर औषधि उत्पादों के बीच विभेदन और सप्लायर प्रेरित, प्रिस्क्रिप्शन-चालित मांग ने अधिकांश दवा-किस्मों के संदर्भ में बाज़ार को चंद हाथों में समेट दिया है और प्रवेश को मुश्किल बना दिया है। हालत यह है कि बाज़ार में जो दवा सबसे अधिक बिकती है (मार्केट लीडर) वही कीमतों में भी सबसे महंगी (प्राइस लीडर) भी है। उपभोक्ता द्वारा कीमत के विपरीत चुनाव (यानी महंगी दवा का ज़्यादा बिकना) इस बात का परिणाम है कि जानकारी का अभाव है और बाज़ार में केंद्रीयकरण है।

क्या किया जाए

इस ज़बर्दस्त गड़बड़ी को दूर करने तथा देश में जेनेरिक दवाइयों को बढ़ावा देने के लिए कई उपाय करने की ज़रूरत है। सबसे पहले तो कुछ समर्थक कानूनों और नियमन की ज़रूरत है जो

(1) जेनेरिक नाम वाले प्रिस्क्रिप्शन को अनिवार्य कर दें। यह काम मानक उपचार क्रम के निर्देशों के ज़रिए किया जा सकता है (इस नीति से विचलन की इज़ाजत उसी स्थिति में मिलनी चाहिए जब कोई ठोस कारण हो)।

(2) फार्मेसिस्ट को जेनेरिक प्रतिस्थापन का अधिकार मिले।

(3) क्रमिक रूप से जेनेरिक दवाइयों को ब्रांडविहीन करने का काम हो।

दूसरा, गुणवत्ता सुनिश्चित करने की क्षमता को सुदृढ़ करना होगा और जैविक समतुल्यता दर्शाने की व्यवस्था भी बढ़ानी होगी। इसके अलावा, औषधि निर्माण व बिक्री की बेहतर निगरानी व्यवस्था भी होनी चाहिए।

तीसरा, पेशेवर व आम जनता के बीच स्वीकार्यता बढ़ाने के प्रयास करने होंगे। चौथा, दवा की कीमतों के बारे में जानकारी का व्यापक प्रचार-प्रसार करना होगा। और अंत में, कुछ आर्थिक उपायों का सहारा भी लेना होगा, जैसे रेफरेंस प्राइसिंग, रीइंम्बर्समेंट नीति, मूल्य नियंत्रण, और जेनेरिक दवाइयों को बढ़ावा देने के लिए उद्योगों को इन्सेंटिव्स वगैरह। इन्हीं सबके आधार पर ही हम 'सबके लिए किफायती दवा' का लक्ष्य हासिल कर पाएंगे। ***(स्रोत फीचर्स)***